International Journal of Geology, Agriculture and Environmental Sciences
Volume – 3 Special Issue, January - December 2015
Website: www.woarjournals.org/IJGAES *ISSN: 2348-0254*

झुंझुनूं जिले में भूमि उपयोग समस्याएँ एवं निदान

Dr. Mukesh Kumar Sharma
Principal,
Bloom College, Chirawa, Jhunjhunu
Dr. Ramkishor Sharma
Assistant Professor

अध्ययन क्षेत्र :
अध्ययन क्षेत्र झुंझुनूं जिला राजस्थान राज्य के 27^0 38′ से 28^0 36′ उत्तरी अक्षांश तक तथा 75^0 02′ से 76^0 06′ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। जिले के उत्तर–पश्चिम में चुरू जिला तथा दक्षिण पश्चिम में सीकर जिला तथा उत्तर–पूर्व में हिसार और महेन्द्रगढ़ से घिरा हुआ है। **(मानचित्र 1)**

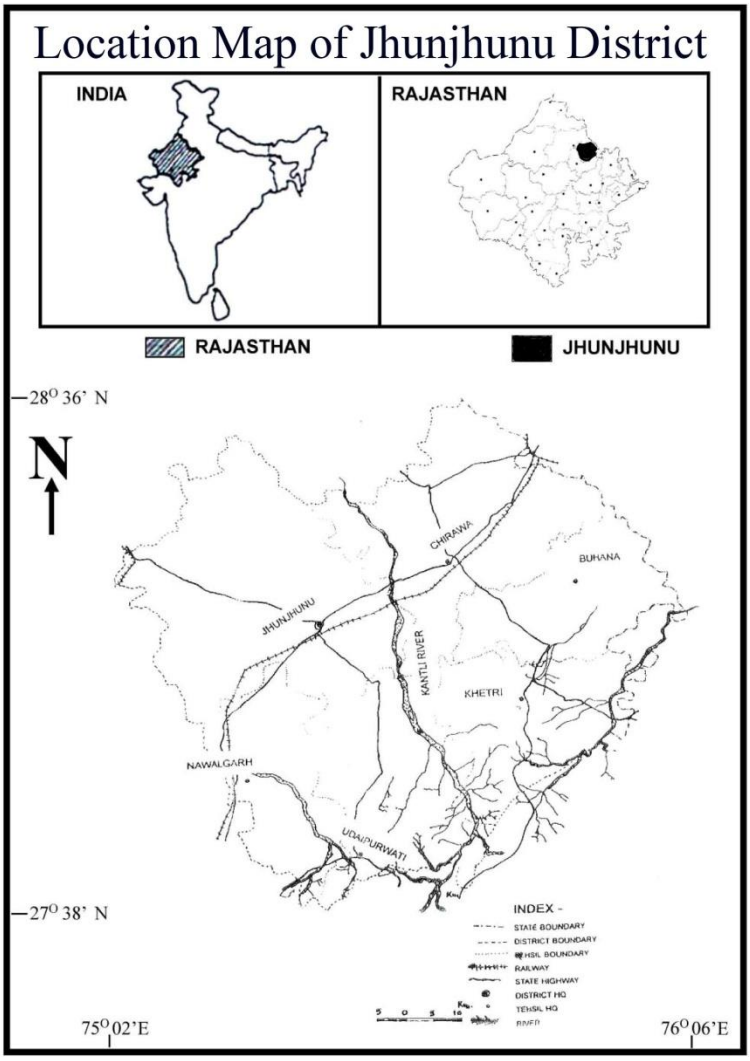

अध्ययन क्षेत्र का कुल भौगोलिक क्षेत्र 5928 वर्ग कि.मी. है समुद्र तल से 338 मीटर की ऊचाई पर स्थित है। जिले को पॉच मुख्य विभाजन तथा छ तहसीलों झुंझुनूं, चिड़ावा, खेतड़ी, बुहाना, नवलगढ़, उदयपुरवाटी तथा 8 पंचायत समितियों में बटा हुआ है। अध्ययन क्षेत्र झुंझुनूं जिले में 12 नगरपालिकाऐं है।

जिले की कुल जनसंख्या 2011 के अनुसार 21,39,658 है तथा जिले का जनघनत्व 361 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी. है, जो 2001 की तुलना में 38 अधिक है। जिले की कुल जनसंख्या राजस्थान की 3.12 प्रतिशत है जिसमें 1,097,390 पुरूष तथा 1,042,268 महिलाऐं है। 2001–2011 के मध्य जिले की जनसंख्या वृद्धि दर 11.81 प्रतिशत रही, जिलें की कुल साक्षरता 2001 में जहां 73.04 प्रतिशत थी

वही 2011 में बढ़कर 74.72 प्रतिशत के साथ राजस्थान में तीसरा स्थान प्राप्त है। जिलें की पुरूष साक्षरता 87.88 प्रतिशत जो राज्य में सर्वाधिक पुरूष सारक्षता है, जिला महिला सारक्षरता की दृष्टि से कोटा ओर जयपुर के बाद 61.15 के साथ तीसरा स्थान रखता है। झुंझुनूं जिले में 12 नगर 927 गांव है। राजस्व रिकार्ड के अनुसार जिले के कुल क्षेत्रफल 591536 हैक्टेयर में से वन क्षेत्र (6.70 प्रतिशत), कृषि के लिए अयोग्य (6.34 प्रतिशत), जोत रहित भूमि, पड़त भूमि के अतिरिक्त (7.87 प्रतिशत), पड़त भूमि (7.62 प्रतिशत), वास्तविक बोया गया क्षेत्रफल दुपज घटाकर (71.47 प्रतिशत) है।

झुंझुनूं जिले का नाम झुंझुनूं नगर से लिया गया है जिसमें खेतड़ी, नवलगढ़, उदयपुरवाटी, बिसाऊ, डुण्डलोद और मण्डावा ठिकानों को सम्मिलित किया गया है जो स्वतंत्रता पूर्व जयपुर राज्य के भाग थे यह क्षेत्र कभी स्वतंत्र राज्य नहीं रहा परन्तु व्यवसायिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा है और यहां के व्यापारी देश–विदेश में बड़े प्रतिष्ठानों के लिए प्रसिद्ध रहे है यहां व्यापारियों के द्वारा निर्मित हवेलियां व मन्दिर आज पर्यटक स्थल के रूप में महत्वपूर्ण है। जिलें का अधिकांश भाग मैदानी है रेतीलें टीलों की ऊँचाई लगभग 15–30 मीटर के मध्य है जिलें का सामान्य ढ़लान उत्तर–पूर्व की ओर है।

जिलें का दक्षिण–पश्चिम तथा उत्तर–पूर्वी क्षेत्र चट्टानों के चबुतरों से बना है जो रेत से ढ़का हुआ है। जिले के खेतड़ी व समीपवत्ती क्षेत्रों में तांबे के भण्डार उपलब्ध है जिनका विवरण सिन्धु घाटी सभ्यता से भी प्राचीन है मरूस्थलीय भाग के शेखावाटी क्षेत्र का यह जिला सबसे समृद्ध है। थार का मरूस्थल के मध्य स्थित होने के कारण झुंझुनूं जिलें का तापमान 45^0–46^0 उच्चतम तथा 1^0 न्यूनतम तक रहता है। सापेक्ष आद्रता 50 से 60 प्रतिशत के बीच पायी जाती है झुंझुनूं जिलें में औसत वार्षिक वर्षा 48.18 से.मी. है झुंझुनूं जिलें में अधिकांशतया 90 प्रतिशत वर्षा जुलाई से सितम्बर के बीच होती है। झुंझुनूं जिलें में 463563 हैक्टेयर कृषि के अन्तर्गत आता है जिसमें पड़त भूमि शामिल है। स्वामित्व के आधार पर जिलें में 165703 जोते है जिनमें से सीमान्त कृषकों की संख्या 32746 (19. 76 प्रतिशत) तथा लघु कृषक 47283 (28.54 प्रतिशत) है। अर्द्ध मध्यम कृषक 51218 (30.91 प्रतिशत) तथा मध्यम कृषक 30763 (18.56 प्रतिशत) तथा बड़ें कृषकं 3693 (2. 23 प्रतिशत) है तथा फसलों में गेहूं, चना, जौ, बाजरा मुख्य है।

झुंझुनूं जिलें में कुल कृषि क्षेत्र 463563 हैक्टेयर में से 198942 हैक्टेयर सिंचित है जिसमें 28 हैक्टेयर नहरी क्षेत्रों को छोड़कर शेष क्षेत्र कुओं तथा ट्यूबवैल द्वारा सिंचित है। इस प्रकार मुख्यतः भू–जल स्त्रोत से सिंचाई की जाती है। जिलें में 4203 डीजल पम्प सैट तथा 31678 ऊर्जा कृत ट्यूबवैल है। इस प्रकार जिलें का 42.92 प्रतिशत क्षेत्र सिंचित है।

परिचय :

विश्व की जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है फलतः कृषि भूमि पर दिन प्रतिदिन दबाव बढ़ता जा रहा है। इतना ही नहीं व्यावसायिक कृषि की प्रतिस्पर्दा में कृषक एक ही भूमि को कई फसलों के उत्पादन तथा विविध उपयोगों में लाता है जिससे मृदा की उत्पादन शक्ति क्षीण होती जा रही है। भूमि सुरक्षित एवं लाभदायी बनी रहे। इसे ही भूमि उपयोग नियोजन कहा जाता है। उचित भूमि नियोजन हेतु मिट्टी के अतिरिक्त भूमि प्रबंधन भूमि की भौतिक विशेषताएं आदि कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिये जैसा कि स्टैलिंग ने कहा हैं –

भूमि संसाधन सम्बन्धी समस्याओं ने सभी भूगोलवेत्ताओं कृषि अर्थशास्त्रियों, मृदा विशेषज्ञों और सरकार का ध्यान भूमि उपयोग नियोजन की ओर आकृष्ट किया है। ये समस्याएं विश्व में लगभग समान हैं। किन्तु भिन्न–भिन्न देशों के भूगोलवेत्ताओं एवं कृषि अर्थशास्त्रियों द्वारा अपने देश की भौतिक एवं सांस्कृतिक दशाओं को ध्यान में रखकर भूमि उपयोग नियोजन को अपने ढंग से अपनाने का प्रयास शुरू किया गया है।

सर्वप्रथम भूमि उपयोग नियोजन की विधियां विश्व के विकसित देशों में अपनाई गयी। विश्व में भूमि उपयोग नियोजन की विधि की शुरूआत संयुक्त राज्य अमेरिका में हुई। इसके पश्चात् अन्य देशों में इसमें सुधार किया गया तथा इस विधि को विकसित किया गया। नीदरलैण्ड में अमेरिकी विधि का सुसंगत सुधार विशेष उल्लेखनीय है धीरे–धीरे इसके प्रति विश्व का रूझान होता गया। विश्व स्तर पर सेमीनार एवं कार्यशालाएं आयोजित की गई जिससे इस विषय को नया आयाम मिला। भूमि के वैकल्पिक एवं विशिष्ट उपयोग के लिए उपाय सुझाये गये। जैसे–फसलों के उत्पादन के साथ पशुपालन, वानिकी उद्योग एवं अन्य उपयोगों के लिये भूमि को सुनियोजित तरीके से विकसित कर उपयोग करना।

अपरदन की समस्या :

भूमि के कटाव या मृदा अपरदन की समस्या जिले में गम्भीर समस्या है। यह भूमि क्षरण या मृदा क्षरण एक ऐसी प्राकृतिक आपदा है, जो कि एक उपजाऊ भूमि को भी बंजर बना देती है। जब धरातलीय मृदा किसी भी साधन द्वारा स्थानान्तरित होकर अन्यत्र जमा हो जाती है, तो यह भूमि क्षरण कहलाता है। इसका प्रभाव पर्यावरण पर अनेक प्रकार से होता है। जैसे भूमि का समाप्त होना, बंजर भूमि में वृद्धि होना, उपजाऊपन में कमी होना, सूखा या बाढ के प्रकोप में वृद्धि होना एवं परोक्ष रूप से जलवायु में परिवर्तन होना मृदा क्षरण से पारिस्थितिक तन्त्र में भी व्यवधान उत्पन्न हो जाता है। क्योंकि मृदाक्षरण के फलस्वरूप धरातल, वनस्पति विहीन हो जाता है और जिसका कुप्रभाव यह होता है धरातल पर जैव जीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है।

मरुस्थलीकरण :

सामान्य अर्थों में मरुस्थल वह क्षेत्र है, जहाँ कि जलभाव के कारण जैव जीवन नगण्य है। न्यूनत वर्षा वाले क्षेत्र वनस्पति विहीन होकर मरुस्थल बन जाते हैं, परन्तु वर्तमान में अनेक भौतिक व मानवीय कारणों से आबाद क्षेत्र भी मरुस्थल का रूप लेता जा रहा है। इसी सन्दर्भ में मरुस्थलीकरण से अभिप्राय उन प्राकृतिक स्थितियों के

विस्तार से है, जो कि न्यूनतम वर्षा तथा उच्च तापमान द्वारा वनस्पति अभाव के कारण उत्पन्न होती है। वर्तमान में मरुस्थलीकरण की यह प्रक्रिया निरन्तर गतिशील हो रही है। जो कि पर्यावरण की प्रतिकूलता का ही एक जीता–जागता उदाहरण है तथा उस पारिस्थितिकी तन्त्र की ओर इंगित करता है, जहाँ कि समानुकूलन अत्यन्त विपरीत परिस्थितियों में किया जाता है। रेतीला मरुस्थल अपना क्षेत्रफल हवा के उडाव से बढा रहा है, क्योंकि वनस्पति अभाव के कारण तीव्र गति की हवा बालू मिट्टी को उडाकर उपजाऊ भूमि को ढक देती है। वह उसे भी धीरे–धीरे मरुस्थल ही बना डालती है।

बंजर भूमि :

बंजर भूमि को परिभाषित करते हुए राष्ट्रीय बंजरभूमि विकास बोर्ड ने बतलाया है कि बंजर भूमि वह है, जो जल एवं मिट्टी के उचित प्रबन्धन के अभाव में जल एवं वायु द्वारा अपर्जित हो रही है तथा जिसकी भौतिक एवं रासायनिक गुणवत्ता में मानवीय क्रियाकलापों के फलस्वरूप गुणात्मक ह्रास हो रहा है तथा जिसको उचित तरीके अपनाकर वनस्पति उगाने योग्य बनाया जा सकता है।

बंजर भूमि के अन्तर्गत कृषियोग्य बंजर भूमि तथा कृषि अयोग्य बंजर भूमि को सम्मिलित किया जाता है। भौगोलिक वितरण की दृष्टि से यदि देखा जाए, तो इसका सार्वजनिक विस्तार बलूई भूमि के रूप में अधिक है। जो जिले के मरुस्थलीय क्षेत्र में है। जिले में इस विस्तृत बंजर भूमि का उपयोग इसके गुण व मात्रा के अनुसार निश्चित अवधि के अन्तर्गत समुचित रूप में उपयोग करने की योजना के कार्यान्वयन से पर्यावरण असंतुलन को रोका जा सकता है। इस बंजर भूमि को खेती, वृक्षारोपण, आवासीय कॉलोनी, पशुओं के लिए गुणात्मक चारागाह इत्यादि के रूप में परिवर्तित कर एवं आदर्श भूमि उपयोग के रूप में अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं।

भारत सरकार के कृषि एवं खाद्य मन्त्रालय की बंजर भूमि कमेटी ने बंजर भूमि के अन्तर्गत ऊसर तथा अनुपजाऊ बंजर भूमि, कृषियोग्य बंजर भूमि, चारागाह भूमि तथा पुरानी पडत भूमि को सम्मिलित किया है। राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड की स्थापना सन् 1960 में की गई, इसके परिणाम स्वरूप बंजर भूमि विकास कार्यक्रम तेजी से क्रियान्वित किए गए। जिले में बंजर भूमि विकास कार्यक्रम को क्रियान्वित करने का उत्तरदायित्व ग्रामीण विकास एवं पंचायत राज विभाग का है। जो वन, राजस्व, योजना, कृषि एवं सिंचाई आदि से सम्बन्धित विभिन्न भागों में परस्पर समन्वय स्थापित करना है। जिले में बंजर भूमि विकास हेतु निम्न कार्यक्रम चलाये जाने चाहिए।

1. सामाजिक वाणिकी योजना
2. बंजर भूमि का भूमि हीनों को आवंटन
3. एकीकृत बंजर भूमि विकास योजना

भूमि उपयोग नियोजन की पद्धति :

इस पद्धति के द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार भूमि को मुख्य दो भागों में तथा आठ उप विभागों में विभाजित किया गया है जो निम्न प्रकार है :–

1. कृषि योग्य भूमि।
2. कृषि के लिये अयोग्य भूमि।

कृषि योग्य भूमि :

1. सर्वोत्तम भूमि :

न्यूनतम बाधाएं कृषि कार्य में आसानी भूमि का विविध उपयोग।

2. उत्तम भूमि :

साधारण समस्याएं एवं फसलों की संख्या कम। ऐसी भूमि संरक्षण की साधारण पद्धतियों से संरक्षित रह सकती है। इस प्रकार की भूमि में शस्यावर्तन एवं उर्वरकों का प्रयोग आवश्यक होता है।

3. मध्यम से उत्तम भूमि :

जिस भूमि में कई समस्याएं रहती है जिसके कारण फसलों का चयन बहुत कम होता है, को इस संवर्ग में सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार की भूमि को फसलों के अनुकूल बनाने के लिए विशेष मृदा संरक्षण की आवश्यकता पड़ती है जैसे सीढ़ीदार खेत बनाना, शस्यावर्तन को अपनाना, रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग तथा भूमि को आच्छादित करने वाली फसलों की कृषि आदि।

4. निम्न श्रेणी की भूमि :

कृषि कार्य हेतु चुनौतियों से भरी भूमि को इस सवंर्ग में रखा जाता है। इस प्रकार की भूमि पर कृषि करने में अत्यधिक सावधानी तथा कुशल प्रबंधन की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी भूमि वाले क्षेत्रों में पशुपालन उद्यम सफल हो सकता है क्योंकि यहां प्राकृतिक चारागाह एवं घास की कृषि आसानी से की जा सकती है।

कृषि के लिये अयोग्य भूमि :

1. समस्याग्रस्त भूमि :

ऐसी भूमि जिस पर मृदा अपरदन की समस्या तो नहीं होती किंतु अधिक नमी, पथरीली, अत्यधिक जल की समस्या होती है। इन समस्याओं को दूर नहीं किया जा सकता है। इस भूमि का उपयोग चारागाह, पशुपालन, जंगल एवं जंगली जानवरों के लिए ही किया जाता है।

2. अधिक समस्याग्रस्त भूमि :

पथरीली, ढालू, उबड़–खाबड़, शुष्क एवं अल्प अभिगम्य क्षेत्र। इस प्रकार की भूमि में चारागाह पशुचारण का कार्य किया जा सकता है।

3. अत्यधिक समस्याग्रस्त भूमि :

तीव्र ढाल, उबड़–खाबड़ शुष्क, आर्द्र भूमि इस संवर्ग की भूमि पर पशुचारण, वानिकी एवं जंगली जीवों का संरक्षण कियो जा सकता है।

4. जटिल भूमि :

अत्यधिक उबड़–खाबड़ एवं असमान भूमि, पथरीली, दलदली, अत्यधिक अपरदित होने वाली मिट्टयां। इस संवर्ग की भूमि वन्य प्राणी संरक्षण, तथा मनोरंजन के उपयोग में लाई जा सकती है।

भूमि उपयोग नियोजन :

भारत में मृदा की विशेषताओं के आधार पर भूमि सर्वेक्षण करके भूमि उपयोग को नियोजित किया गया। भूमि नियोजन सम्बन्धी कार्य ''अखिल भारतीय मृदा एवं भूमि उपयोग सर्वेक्षण संगठन'' ने किया जो निश्चित रूप से

सराहनीय कदम है। इस संगठन ने दो समूहों तथा आठ वर्गो में भूमि को निम्न प्रकार से विभाजित किया –

कृषि योग्य भूमि

1. सर्वोत्तम कृषि योग्य भूमि :

समस्या विहीन।

2. उत्तम कृषि योग्य भूमि :

इस संवर्ग की भूमि अपरदन एवं बाढ़ से ग्रसित रहती है। अतः इनका नियंत्रण आवश्यक है। साथ ही सिंचाई व्यवस्था एवं उचित प्रवाह प्रबंध आवश्यक है।

3. मध्यम–उत्तम कृषि योग्य भूमि :

इस संवर्ग की भूमि का अपरदन एवं बाढ़ से नियंत्रण, जल संरक्षण तथा उचित प्रवाह प्रबंध की नितान्त आवश्यकता है।

4. सीमित कृषि योग्य भूमि :

उचित प्रबंध एवं संरक्षण आवश्यक है।

कृषि के लिये अयोग्य भूमि :

1. पशुचारण हेतु उपयुक्त भूमि।
2. पशुचारण या वानिकी हेतु उपयुक्त भूमि।
3. पशुचारण एवं वानिकी हेतु अधिक उपयुक्त भूमि।
4. वन्य प्राणी, मनोरंजन एवं जलापूर्ति संरक्षण हेतु विशेष उपयुक्त भूमि।

भारतीय भूमि उपयोग नियोजन पद्धति संयुक्त राज्य अमेरिका की पद्धति के समान है। इस पद्धति के आधार पर भारतीय विद्वानों द्वारा क्षेत्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण कार्य किया गया है।

भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले कारक :

अनेक कारक भूमि उपयोग को प्रभावित कर विभिन्न रूपों में उत्पादन कार्यो को नियंत्रित करते है। भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले दो प्रमुख कारक है

1 भौतिक कारक :

भौतिक कारकों के अन्तर्गत जलवायु, धरातल, मृदा, जलतंत्र आदि प्रमुख है जिनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से प्रभाव पड़ता है। प्राकृतिक कारक ही भूमि उपयोग के मौलिक स्वरूप को निर्धारित करते है।

2 मानवीय कारक :

भूमि उपयोग नियोजन को मानवीय क्रिया–कलाप भी प्रभावित एवं नियंत्रित करते हैं। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, औद्योगिक आदि मानवीय पर्यावरण को नियोजित करते हैं क्योंकि सामाजिक संस्थाएं और व्यवस्थाएं इसके उपयोग को सुनिश्चित रूप प्रदान करती है। आर्थिक गतिविधियां भी भूमि उपयोग को प्रभावित करती है। ये व्यवस्थाएं सभी जगह एक समान नहीं होती। इसके अतिरिक्त संस्थागत तत्व जैसे–सांस्कृतिक पर्यावरण, सामाजिक संगठन, सामाजिक मूल्य, सामाजिक परपंरा, सरकारी नीति–नियम आदि भी भूमि उपयोग को प्रभावित करते है।

इस प्रकार भौतिक दशाएं एवं माननीय पर्यावरण की गतियां कृषि को पूर्णतया प्रभावित करती है। फलतः विश्व के विभिन्न भागों में भिन्न–भिन्न कृषि अर्थव्यवस्थाएं एवं कृषि स्वरूप विकसित हुई हैं। मानव भी इनका उपयोग करता है तथा अभिनव आयाम देता है परिणामस्वरूप क्षेत्रीय विविधताओं का विकसित होना स्वाभाविक है। सभी समाजों की अर्थव्यवस्था एक सी नहीं होती। अलग–अलग समाजों में भिन्न–भिन्न जीविकोपार्जन पद्धतियां विकसित हो जाती है जैसे कहीं गहन कृषि या विस्तृत कृषि का विकास हुआ है तो कहीं शुष्क या सिंचित कृषि।

भूमि उपयोगे को अन्य तत्व भी प्रभावित करते है जैसे मानवीय गतियां जनसंख्या का वितरण, जनघनत्वएवं परिवर्तित होती सामाजिक मान्यताएं आदि इन तत्वों का प्रभाव समय के बदलाव के साथ–साथ ही देखा जा सकता है। ये सभी मानवीय गतियां प्राकृतिक सतुंलन में व्यवधान उत्पन्न करती रहती हैं जो एक चुनौतीपूर्ण मुद्दा बन जाता है जिसका समाधान असंभव प्रतीत होता है।

भूमि उपयोग में परिवर्तन :

भूमि का वर्गीकरण प्रमुख रूप से भौम्याकार, मृदा तथा वर्षा के आधार पर किया जाता है। मानव अपनी आवश्यकतानुसार भूमि का विभिन्न रूपों में उपयोग करता है। भूमि का उपयोग निवास, मकान, उद्योग, सड़कें, यातायात, सुरक्षा मनोरंजन आदि के रूप में किया जाता है। इस प्रकार भूमि उपयोग के आधार पर वर्गीकरण सरल हो जाता है फिर भी कृषि भूमि का वर्गीकरण इतना सरल नहीं है क्योंकि भूमि के उपयोग के साथ–साथ समय–समय पर परिवर्तन होते रहते है। अतः समय–समय पर होने वाले परिवर्तनों को समझना आवश्यक है।

भूमि उपयोग में परिवर्तन भूमि के विविध उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उपयोग में लाने से होता है। उद्देश्यों में परिवर्तन के फलस्वरूप भूमि उपयोग में परिवर्तन स्वभाविक है, जैसे–फसल के अन्तर्गत भूमि में वृद्धि या कमी से कृषि भूमि के गहन व विस्तृत उपयोग तथा उत्पादन आदि में परिवर्तन भूमि उपयोग के परिवर्तन की महत्वपूर्ण दिशाएं है।

कभी–कभी चारागाह भूमि को फसलों के अंतर्गत लेने या आकृषित भूमि में लेने या इसके विपरीत कृषि भूमि का स्वतंत्र पड़े रहना, भूमि उपयोग में परिवर्तन होना है।

वर्तमान में जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप भूमि उपयोग स्वरूप में अत्यधिक परिवर्तन आया है क्योंकि अधिक जनसंख्या को भरणपोषण हेतु भूमि उपलब्ध करने हेतु वनों की कटाई की जा रही है या बंजर भूमि पर भी सिंचाई सुविधाओं का विस्तार करके कृषि कार्य किया जा रहा है। फलतः भूमि उपयोग में परिवर्तन से पारिस्थैतिकी तंत्र प्रभावित हुआ है।

भूमि उपयोग में परिवर्तन के कारण :

भूमि उपयोग में परिवर्तन के लिये कई कारक उत्तरदायी है। कुछ कारक प्रत्यक्ष रूप से तो कुछ कारक अप्रत्यक्ष रूप से इसको प्रभावित करते है। इसी प्रकार कुछ कारक शीघ्र तो कुछ कारक देर में प्रभावित करते हैं। भूमि उपयोग परिवर्तन के दो प्रमुख कारण हैं –

1. प्राकृतिक कारण
2. सामाजिक व्यवस्थाएं एवं संस्थाएं

प्राकृतिक कारणों जैसे भूमि की संरचना, जलवायु आदि में परिवर्तन होता रहता है फलतः भूमि उपयोग में परिवर्तन हो जाता है।

सामाजिक व्यवस्थाएं व संस्थाएं परिवर्तनशील होती है। इनके द्वारा भी भूमि उपयोग में परिवर्तन आ जाता है। ऐसे कारण निम्न हैं –

1. आर्थिक परिवर्तन :

आर्थिक परिवर्तन कई रूपों में आते है। इसके अन्तर्गत जनसंख्या, खान–पान, आधुनिक कृषि साधनों की मांग में परिवर्तन, तकनीकी में परिवर्तन, साधनों में अधिक लाभ, आदि मुख्स हैं।

2. संस्थागत परिवर्तन :

1. भूमि की काश्तकारी में परिवर्तन,
2. भू–स्वामित्व में परिवर्तन,
3. जोत के आकार में परिवर्तन,
4. मानवीय कुशलता में परिर्वतन,
5. सांस्कृतिक परिवर्तन,
6. राजनीतिक उतार–चढ़ाव
7. समाज के उद्देश्यों में परिवर्तन

इस प्रकार प्राकृतिक एवं सामाजिक व्यवस्थाएं व संस्थाएं भूमि उपयोग को किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित करती है। वर्तमान में विश्व में जनसंख्या वृद्धि, सामाजिक उद्देश्यों में परिवर्तन तथा मानवीय कुशलता, तकनीकी विकास के फलस्वरूप भूमि उपयोग में क्रांतिकारी परिवर्तन आये है।

भूमि उपयोग नियोजन के उद्देश्य :

निम्न स्तर से लेकर वृहद् स्तर तक भूमि उपयोग का नियोजन किया जाना चाहिये। लघु क्षेत्रों में भूमि वर्गीकरण विशिष्ट उद्देश्य के आधार पर किया जाना चाहिये। भूमि उपयोग के वर्गीकरण से भूमि के महत्वपूर्ण संभावित उपयोगिता को आंकलन किया जा सकता हैं, जैसे कुछ क्षेत्र अनेक प्रकार के खाद्यान्नों के लिए उपयुक्त हो सकते हैं जबकि कुछ क्षेत्र फल–फूल, सब्जी, दुग्ध उद्योग तथा व्यावसायिक फसलोत्पादन के लिए उपयुक्त होंगे। भूमि उपयोग नियोजन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

1 उचित कृषि आधारों की स्थापना :

भूमि उपयोग नियोजन का प्रमुख उद्देश्य उचित कृषि आधारों की स्थापना करना है जिससे कृषि को मजबूती मिले। नवीन आधारों की स्थापना से उत्पादन में भी वृद्धि होगी तथा अधिक जनसंख्या हेतु खाद्यान्न आसानी से जुटाया जा सकता है।

2 भूमि सुरक्षा योजना :

भूमि उपयोग नियोजन से भूमि का संरक्षण किया जा सकता है जिससे मृदा की उत्पादकता (उर्वरा शक्ति) यथावत बनी रहे।

3 पूंजी निवेश की सुविधाए :

भूमि उपयोगों में विस्तार के साथ कृषि में तकनीकी प्रयोगों की आवश्यकता पड़ती जिसके लिए पूंजी निवेश की आवश्यकता होती है। अतः इस हेतु सरकार अथवा अन्य संस्थाओं द्वारा ऋण उपलब्ध कराये जाते हैं जिससे कृषि में आधुनिकतम प्रयोग करके कृषि के स्तर को सुधारा जा सकता है।

4 सिंचाई सुविधाओं का विस्तार :

भूमि के मूल्यांकनोपरांत जिन भागों में सिंचाई करके कृषि कार्य संभव हो सकता है वहां सिंचाई सुविधाओं का विस्तार किया जाता है।

5 अन्य कृषि विकासात्मक योजनाओं का क्रियान्वन :

भूमि नियोजन के तहत विभिन्न कृषि सम्बन्धी विकासात्मक योजनाओं का क्रियान्वयन किया सकता है।

भूमि उपयोग नियोजन का महत्व :

कृषि भूमि उपयोग के नियोजन का महत्व निम्नवत है –

1. भूमि उपयोग नियोजन के माध्यम से सभी प्रकार की भूमि की विस्तृत जानकारी प्राप्त की जा सकती है।
2. भूमि की आर्थिक उपयोगिता के आधार पर वर्गीकरण किया जा सकता है।
3. भूमि उपयोग नियोजन से भूमि की उत्पादकन क्षमता को आंका जा सकता है।
4. भूमि उपयोग नियोजन से भूमि की सामर्थ्यता का पता लग जाता है तथा उसी अनुरूप भूमि का उचित उपयोग किया जा सकता है।
5. भूमि उपयोग नियोजन के माध्यम से भूमि पर जनसंख्या के दबाव का पता लगाया जा सकता है तथा अकृषि क्षेत्रों को कृषि योग्य बनाकर भूमि पर जनसंख्या के दबाव को कम कियो जा सकता है।
6. भूमि उपयोग नियोजन का मुख्य उद्देश्य अनुपयुक्त भूमि को उपयोग में लाने की योजना बनाना है।
7. भूमि उपयोग नियोजन से लाभ यह है कि भूमि के दुरूपयोग को नियोजन से ही रोका जा सकता है।
8. भूमि उपयोग नियोजन से सभी प्रकारे की भूमियों की जानकारी तो मिलती ही है साथ ही नये भूमि क्षेत्रों की खोज भी की जाती है।
9. भूमि उपयोग नियोजन के माध्यम से भूमि उपयोग को तकनीकी स्वरूप दिया जा सकता है जिससे भूमि की गुणात्मकता में वृद्धि हो।
10. भूमि उपयोग नियोजन से कृषकों में जागृति लाई जा सकती है तथा किसी देश की भूमि की उपयोगिता वृद्धि के साथ आर्थिक स्तर को ऊंचा उठाया भी जा सकता है। मृदा सम्बन्धी अनेक दोषों को दूर करने का सुझाव भूमि उपयोग नियोजन का प्रमुख उद्देश्य है जो कि किसी भी देश के लिए आवश्यक है।

निदान :

झुंझुनूं जिले के विकास को कायम रखने के लिए निम्नलिखित निदान प्रस्तुत है।

1. प्राकृतिक वनस्पति का विकास :

जिले में अरावली पर्वत श्रेणियों में वृक्षारोपण किया जाकर एक नया प्राकृतिक वनस्पति क्षेत्र का विकास किया जाना अपेक्षित है। जिससे मरूस्थल प्रसार पर नियंत्रण तथा पारिस्थितिकी संतुलन बना रहे।

2. पड़त भूमि का विकास :

आज भी झुंझुनूं जिले में विशाल भू–भाग कृषि अयोग्य और बंजर पड़ा हुआ है इस भूमि में अभी भी आधुनिक कृषि सुविधा उपलब्ध नही हो पायी है। पड़त भूमि में सुधार करना जरूरी है। जिससे की अधिक फसलें उत्पादन किया जावें काश्त क्षेत्र पर जनसंख्या का दबाव कम हो सके।

3. सिंचाई सुविधाओं को बढ़ोतरी :
झुंझुनूं जिले में 98 प्रतिशत से अधिक सिंचाई कुएं/नलकूप भूमिगत जल संसाधनों द्वारा होती है जिसके कारण भूमिगत जल में प्रतिवर्ष गिरावट हो रही है। कहीं–कहीं पर तो कुओं में जल का अभाव हो गया है इसलिए जरूरी है कि झुंझुनूं जिले में सिंचाई कुओं/नलकूपों द्वारा कम करने के लिए यहां वर्षा जल का सदउपयोग किया जावें एवं नहरो द्वारा सिंचाई की व्यवस्था करनी होगी। जिले में नहरो का अभाव है। अतः वर्षा जल का उपयोग करने के लिए नदियों पर छोटे–छोटे बॉध बनाये जावें। जिससे पर्यावरणीय अवकर्ण भी नही होगा और कुओं से सिंचाई में कभी होगी।

4. शुष्क कृषि पद्धति :
झुंझुनूं जिले में सिंचाई के अभाव में शुष्क कृषि पद्धति द्वारा फसलें उत्पादन की जाती है। इस पद्धति से सरसों, चना, जौ अच्छी मात्रा में ही पैदा हो रहा है, एवं लाभ भी अधिक मात्रा में मिल रहा है। ऐसी स्थिति में शुष्क कृषि पद्धति से भूमिगत जल दोहन कम किया जा सकता है। पर्यावरण प्रदूषण को नियत्रित करने हेतु अधिक आर्थिक लाभ एवं अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए शुष्क फसलों के क्षेत्र में वृद्धि करने की झुंझुनूं जिले में अच्छी सम्भावनाएँ है।

5. गरीबी उन्मूलन :
झुंझुनूं जिले के किसानों की आर्थिक स्थिति बहुत कमजोर है, जिससे कृषि विकास पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। इस गरीबी को दूर करने के लिए सरकारी पहल अपेक्षित है, जिससे किसान के विकास के साथ–साथ कृषि का भी विकास हो सके। किसानों की गरीबी का मुख्य कारण आपनी आपका अधिकांश हिस्सा धार्मिक उत्सवों शादी विवाह, मृत्यु भोज आदि पर खर्च करना है। अतः सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करना चाहिए एवं ऋण देने वाली संस्थानों के मापदण्डों ऐसे हो कि ऋण कृषि विकास पर ही खर्च हो सकें।

6. आधारभूत सुविधाएँ :
कृषि पारिस्थितिकी को उच्च दशा में बनाये रखने के लिए आधारभूत सुविधाओं में विकास करना आवश्यक है। जैसे- यातायात की सुविधा, कृषि साधनों की सुविधा, सहकारिता की सुविधा का विकास तथा विद्युत व शक्ति के साधनों का विवेकपूर्ण उपयोग आवश्यकता है।

7. शिक्षा :
झुंझुनूं जिले की कृषि पारिस्थितिकी को वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित करने के लिए किसानों में शिक्षा का प्रसार होना अतिआवश्यक है। जिससे कि वैज्ञानिक पद्धति को समझ सके। आधुनिक प्रचार–प्रसार के कार्यक्रमों का विकास कर झुंझुनूं जिले के किसानों में कृषि पारिस्थतिकी में जागरूकता लाना है।

8. भूमि सुधार :
कृषि पारिस्थितिकी के संतुलन के विकास के लिए मृदा अपरदन एवं प्रदूषण पर रोक लगाना जरूरी है। प्रतिवर्ष झुंझुनूं जिले की उपजाऊ भूमि अपरदन के कारण अयोग्य होती जा रही है। इसलिए जरूरी है, कि भूमि सुधार कार्यक्रम के द्वारा भूमि अपरदन, उसर भूमि का सुधार आदि का किसानों को प्रशिक्षण देना तथा मेडबन्दी और आधुनिक कृषि पद्धति अपनानी चाहिए।

9. भूमि चकबन्दी व्यवस्था :
अधिक उत्पादन और कम लागत के लिए भूमि को चकबन्दी करना जरूरी है। झुंझुनूं जिले में कृषि छोटे–छोटे दुकड़ों में बटी हुई है। प्रत्येक किसान की भूमि एक स्थान पर हो तो समय श्रम एवं धन की बचत हो सकती है।

10. पशु स्तर में सुधार :
झुंझुनूं जिले में कुछ तहसीलों में पशुपालन अधिक किया जाता है। अन्य तहसीलों में गाय व भैंस दूग्ध के लिए घर में रखी जाती है। पालतु पशु जंगल या वनों में घूमकर भूख मिटाते है। उनके चारी पानी की उचित व्यवस्था नहीं है। अतः कृषि कार्य दुग्ध उत्पादन व अन्य कार्य के लिए पशुओं की दशा सुघारी जरूरी जायें।

11. वन विकास :
वन क्षेत्रों में विकास करके भौतिक, आर्थिक व जलवायु का संतुलन स्थापित किया जा सकता है। वन विकास से मृदा अपरदन, वर्षा की कमी, पर्यावरण प्रदूषण आदि समस्याओं से लाभ मिल सकता है। इसलिए झुंझुनूं जिले में पड़त भूमि, अयोग्य भूमि और मेडबन्दी कर, वृक्ष लगाकर आर्थिक लाभ भी प्राप्त कर सकते है। सरकार को कृषि परिस्थितिकी रक्षा के लिए वन विकास में सहयोग करना चाहिए।

12. सामाजिक वानिकी कार्यक्रम :
सामाजिक वानिकी कार्यक्रम के अन्तर्गत बेकार व बंजर भूमि पर वनो को बढ़ावा देने पर किसान अपनी आवश्यकता के अनुसार खेतों के चारो तरफ व बेकार पड़े भू–भाग पर यहां की जलवायु के अनुसार नीम, शीशम, अमरूद, नीबूं, आवंला, खेजड़ा, किकर, अरडू, बौर आदि वृक्ष लगाकर एक तरफ फसलों के साथ–साथ अतिरिक्त आमदनी प्राप्त कर सकता है। दूसरी तरफ ग्रामीणों को लकड़ी प्राप्त होगी। पशुधन के लिए चारा भी उपलब्ध होगा साथ ही वन क्षेत्र के विस्तार से जलवायिक लाभ भी प्राप्त हो सकेंगे। अतः कार्यक्रम का क्रियान्वन आवश्यक है :

1. प्राकृतिक पर्यावरण का संरक्षण।
2. संतुलित विकास के लिए योजनाबद्ध तरीको से काम किया जावें।
3. गांवों को आधारभूत सुविधाऐं प्रदान कर यहां के लोगों का सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से विकास।

13. जैविक संसाधन की रक्षा करना :
कृषि पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा के द्वारा भौतिक एवं जैविक तंत्रों में परस्पर गतिशीलता होती रहती है। किसी एक तत्व के विनाश से सभी कारक प्रभावित होते है। कृषि में उत्पादन बढ़ाने के लिए झुंझुनूं जिले के किसान रासायनिक खाद्य व कीटनाशको का उपयोग करते है। जिसके कारण सभी जैविक तत्व समाप्त हो रहे है। अतः कृषि पारिस्थितिकी में सहायक जैविक तंत्रों की रक्षा के लिए उपयुक्त तकनिकी का विकास अतिआवश्यक है। कृषि अपशिष्टों का सदुपयोग करना कृषि पारिस्थितिकी के लिए जरूरी है। कृषि में परम्परागत ऊर्जा के साधनों का

उपयोग बन्द किया जावें और आधुनिक साधनों को उपयोग में लाया जावें।

REFERENCES

- Agro Eco-system Director –Arid (2008) Central Arid Zone Research Institute, Jodhpur.
- Annual Report (2008) Agriculturl Project Rajasthan, Govt., Jaipur.
- Chouhan T.S. (1987), Agriculture Geography (A study of Rajasthan State).
- District Statistical Abstract (2008) Directorate of Economical and Statistical, Rajasthan, Jaipur.
- Gurjar R.K. et. al. (2001) Environmental Geography Panchshil Prakashan, Jaipur.
- Author, Field Survey Visites